श्री अग्रदेवाचार्यजी महाराज (रैवासा)

भक्ति-रस के आचार्य श्री अग्रदेवाचार्यजी का प्रादुर्भाव वि.सं. 1553 में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को राजस्थान के किसी गांव के ब्राह्मण कुल में हुआ। श्री अग्रदासजी के पदों की भाषा को देखकर उनका राजस्थान प्रान्त में होना सुसंगत है। प्रायः सन्त महात्माओं में आत्मख्याति की कामना नहीं होती इसलिये उनके जन्म समय का निर्णय एक गवेषणा का विषय बन जाता है। इन महापुरुषों के द्वारा देश व समाज को जो दिशा मिली है उसे भुलाया नहीं जा सकता। समाज का यह पुनीत कर्तव्य है कि उनके जीवन सम्बन्धी सामग्री प्रकाश में लायें जिससे समाजोत्थान में सहयोग मिल सके।

श्री भक्त माल के व्याख्याकार श्री रामेश्वरदासजी रामायणी ने श्री अग्रस्वामी का जन्म सम्वत् 1553 का फाल्गुन शुक्ला द्वितीया माना है।

श्री अग्रदासजी अत्यन्त अल्पवय में ही घर छोड़कर जयपुर गालवाश्रम में (गलता) विराजमान श्रीकृष्णदासजी पयोहारीजी की शरण में आ गये। जिस दिन आप श्री गुरुशरणगत हुए उस दिन श्री गुरुदेव इन्हें मंत्रोपदेश देकर उपासना का रहस्य समझाकर गद्गद् हो गये। उस दिन खूब उत्सव मनाया गया। उसी दिन आमेर नरेश पृथ्वीराज जी दर्शनार्थ आये। उन्होंने श्री पयोहारी जी से इस उत्सव के विषय में पूछा। श्री पयोहारी जी ने दिव्य-शिष्य के बारे में बताया। फिर क्या था, राजा के मन्त्रियों ने महोत्सव को भी दिव्य रूप में परिवर्तित कर दिया। मंगल वाद्यों की तुमुल ध्वनि से गगन गूंज उठा। श्री पयोहारी जी ने दशों दिशाओं में भक्तों को निमंत्रण भेजा। उनके संकल्प मात्र से ही सभी गुप्त प्रकट सन्तों के पास निमंत्रण पहुँच गया। श्री पयोहारीजी ने सबका यथोचित सत्कार किया। सब सन्तों ने अग्रदासजी को भक्ति का आशीर्वाद दिया। भक्त माल के रचयिता श्री नाभाजी इन्हीं विभूति के कृपापात्र शिष्य हैं। एक बार श्री अग्रदासजी व श्री कीलदेवाचार्यजी को जयपुर के जंगल में दीन-हीन अन्धे बालक के रूप में श्री नाभाजी मिले, इस अनाथ बालक को देखकर इन महापुरुषों को दया आई। इन्होंने अपने कमण्डल के जल से इन्हें नई ज्योति प्रदान की, आश्रम में लाकर श्री अग्रदासजी ने इनको पंच संस्कारों से संस्कारित किया, तथा इनका नाम नारायणदास रखा। एक समय की बात है कि श्री अग्रदेवाचार्यजी महाराज अपने इष्टदेव की मानसिक अर्चना ध्यान में निमग्न थे। उसी समय उनके एक वणिक शिष्य की नौका नदी के प्रवाह में डूबने लगी तो उसने अपने गुरुदेव

को स्मरण किया। उसे पूर्ण विश्वास व श्रद्धा थी कि गुरुजी में ऐसा अलौकिक प्रभाव है कि वे अपने शिष्य के संकट को दूर से ही अवगत कर उसका निवारण कर सकते हैं। श्री अग्रस्वामीजी को उसकी रक्षा करने का विचार जाग्रत हुआ तो श्री नारायणदासजी ने जो सेवा की सामग्री संचित किये हुए समीप में ही उपस्थित थे निवेदन किया कि गुरुदेव ! उस भक्त की नौका की व्यवस्था दास ने विधिपूर्वक कर दी है। शिष्य की इस सर्वज्ञता से प्रसन्न हो, नाभि (मन) की बात जानने के कारण श्री अग्रदासजी महाराज इनको नाभा कहने लगे।

श्री अग्रदेवाचार्यजी 1570 के अन्त में रैवासा पधारे ऐसा भाटों की बहियों से ज्ञात होता है। श्री अग्रस्वामी चरित्र के आधार पर एक चमत्कारपूर्ण घटना और सामने आती है। श्री अग्रदेवाचार्यजी ने कलि के कुटिल कुचाली भगवत पराङ्ग मुख जीवों का उद्धार करने के लिये एक सन्त मण्डली को लेकर यात्रा के निमित्त निकले। इसी यात्रा प्रकरण में रास्ते में एक सद्ग्रहस्थ वणिक ने एक माह तक सन्तों की सेवा की, लेकिन जब सन्त मण्डली भावी यात्रा के लिए आगे बढ़ी तो उसी समय सेठ के इकलौते पुत्र को विषधर सर्प ने डस लिया। उस समय सर्वत्र करुण-क्रन्दन छा गया। सन्तों के विषय में नाना अनर्गल बातें होने लगी। सेठ श्री अग्रदेवाचार्यजी के चरण पकड़-पकड़ कर रोने लगा। दयार्द्र हो श्री अग्रदेवाचार्यजी ने सन्तों के चरणामृत से उस बालक को जीवित कर दिया।

ऐसी किंवदन्ती है कि इसी यात्रा प्रकरण में श्री अग्रदेवाचार्यजी को श्री जानकीजी का साक्षात्कार हुआ। एक समय यात्रा करते शाम हो गई। आस-पास कोई ग्राम नजर नहीं आ रहा था। घनघोर जंगल में महात्मा लोग क्षुधातुर व पिपासाकुल हो रहे थे, उसी दिन एकादशी का व्रत भी था। सन्तों को दुखित देखकर श्री अग्रदेवाचार्यजी को बहुत दुख हुआ उसी समय उस वीरान जंगल में दूर एक झोंपड़ी में दीपक का प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। श्री अग्रदेवाचार्यजी ने सन्तों को वहाँ चलने का आदेश दिया। सन्तों ने वहाँ पहुँचकर देखा कि झोपड़ी में एक दिव्य आभायुक्त वृद्धा बैठी हुई थी तथा एक दिव्य सरोवर व बगीचा विद्यमान है। वृद्धा ने सन्तों से जल स्नान के बाद फलाहार सेवन का आग्रह किया। सन्तों ने आग्रह स्वीकार कर फलाहार बनाकर भगवान को निवेदित किया और फिर श्री अग्रदेवाचार्य से फलाहार पाने का आग्रह किया। स्वामीजी ने कहा कि भगवान का प्रसाद उस वृद्धा को देकर आओ। वहाँ जाने पर सन्तों ने देखा कि न वहाँ वृद्धा है न बगीचा है न सरोवर हैं, इस घटना को सुनकर श्री अग्रदेवाचार्यजी को अत्यन्त खेद हुआ, उन्होंने कुछ भी नहीं पाया। माँ जानकी के वियोग में रात्रि भर आँसू बहाते रहे।

भक्त के दुख को माँ कब तक सहन कर सकती थी, वहीं पर भक्त वत्सला माँ जानकी का प्राकट्य हुआ और यह आश्वासन दिया कि मैं रैवासा में सदैव विराजमान रहूँगी। माँ जानकीजी का आश्वासन पा श्री स्वामीजी रैवासा ग्राम में पर्वत की तलहटी में एक पीपल के वृक्ष के पास तपस्या करने लगे। उस समय रैवासा के आस-पास जल का

नितान्त अभाव था। अतः रैवासावासियों ने अपनी व्यथा स्वामीजी से कही, सन्त हृदय "नवनीत समाना" स्वामीजी का हृदय पिघला और अपना चिमटा धरती में धँसाया कि जल उत्ताल तरंगों के साथ निकल आया, वह कुआ आज भी पीठ के पृष्ठ भाग में विद्यमान है। सन्तों की कृपा से आज भी रैवासा ग्राम में पानी आसानी से उपलब्ध हो जाता है।

श्री अग्रस्वामी चरित के आधार पर एक ऐतिहासिक तथ्य और सामने आता है कि तत्कालीन दिल्लीश्वर अकबर बादशाह जब अजमेर की तीर्थ यात्रा पर 20 जनवरी, 1562 को आया था तो श्री अग्रदेवाचार्यजी के सुयश को सुनकर दर्शनार्थ रैवासा आया। उस समय श्री स्वामीजी दातून कर रहे थे। उस समय यवन बादशाह ने स्वयं स्वामीजी से कहा कि हमने सुना है कि यहाँ कोई सिद्ध फकीर रहता है, कृपया हमें बताइये वे कहाँ हैं। श्री स्वामीजी ने कहा उनसे तुम्हारा क्या काम है। बैठो, यहीं मिल जायेंगे। श्री स्वामीजी ने बादशाह को स्वयं के बारे में बताया तो बादशाह ने परीक्षा लेने हेतु कुएँ पर चद्दर बिछा चारों कोनों पर सुपारी रख नमाज पढ़ी। स्वामीजी ने इसे चुनौती मान कपड़े व सुपारी को आधार बता स्वयं निराधार आकाश में बैठ ध्यान लगाया। इस अलौकिकता को देखकर बादशाह बड़ा प्रभावित हुआ और आश्रम की सेवा के लिए बहुत कुछ देने को तैयार हो गया। स्वामीजी ने कुछ नहीं चाहा फिर भी बादशाह ने गौचारण हेतु रैवासा के पूर्वोत्तर में 1600 बीघा जमीन का पट्टा दिया जिसे गायों की गौर कहा जाता था और आगे चलकर यह स्थान गौरिया बना।

श्री अग्रदेवाचार्यजी के शिष्य-प्रशिष्य बड़ी-बड़ी गादियों के प्रवर्तकाचार्य हुए जिनमें श्री नाभादास, तुलसीदास, देवमुरारी, पूर्व बैराठी दिवाकर और मलूकदास प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। धीरे-धीरे रैवासा की परम्परा का इतना विकास हुआ कि रामानन्द सम्प्रदाय के 36 द्वारों में 14 द्वार इन्हीं की परम्परा के स्थापित हुए।

श्री अग्रदेवाचार्यजी हिन्दी साहित्य के महान् कवि भी थे। उनके द्वारा लिखित 'अग्रसार' ग्रन्थ था जो आज उपलब्ध नहीं है, फिर भी उपलब्ध पद प्रकाशित हुए हैं। श्री अग्रकृत अष्टयाम, कुण्डलियाँ, ध्यान मन्जरी, रहस्य त्रय आदि ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं।

श्री अग्रदेवाचार्यजी महाराज की श्री वैष्णव समाज में महान् प्रतिष्ठा इनके स्थित काल से ही हो रही थी। श्री झांझूदासजी महाराज (स्थान हरसोली) आपके समकालीन थे। श्री रूपसरजी महाराज ने गुरु परम्परा में लिखा है कि श्री अग्रदेवाचार्य जी गुरुजी की भांति ही महान् योगी थे और रसिक साहित्य के निर्माता भी थे। आपकी स्वरचित 72 कुण्डलियों में से एक का नमूना देखिए-

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न साँवन होय, संत जन सदा न आवै।
सदा न रहै सुबुद्धि सदा गोबिन्द जस गावै॥

सदा न पच्छी केलि करै इस तरुवर ऊपर।
सदा न स्याही रहै सफेदी आवे भू पर।
अग्र कहै हरि मिलन कौं तन मन डारो खोय।
सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होय॥

अग्रदासजी रचित कुछ भजन -

जानकी नायक सब सुखदायक, गुणगण रूप अपारो।
अग्र अली प्रभु की छवि निरखे, जीवन प्राण हमारो॥
देखो माई रघुनंदन प्रभु आवै॥ टेक॥
उपवन बाग सिकार खेलिकै, चपल तुरंग नचावै॥ १॥

क्रीट मुकुट मुकरुकृत कुण्डल, उर बनमाल सुहावै।
कटि पर लट पट पीत लपेटे, कर गहि बाज उड़ावै॥ २॥

चतुरंगिणी सैन्य संग सोहै, पंचरंग ध्वजा उड़ावै
घुरत निसान भेरि सहनाई, गरद गगन उड़ि जावै॥ ३॥

वंदीजन गन्धर्व गुण गावै, गाय प्रभुहि रिझावै।
जय जयकार करत ब्रह्मादिक इन्द्र पुष्प झरि लावै॥ ४॥

अवधपुरि कुल वधू निहारै, निरखि परम सुख पावै।
मातु कौशल्या करत आरती, अग्रदास बलि जावै॥ ५॥